International Journal of Applied Research 2018; 4(10): 486-489

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(10): 486-489
www.allresearchjournal.com
Received: 06-09-2018
Accepted: 10-10-2018

डॉ. रामफूल जाट
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र, राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रामफूल जाट
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र, राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा, भारत

भारतीय दलित समाज : मुद्दे एवं समस्याएं

डॉ. रामफूल जाट

सारांश
भारतीय हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में उपेक्षित शोषित रहे दलित वर्ग समूह को मुख्य धारा में लाने हेतु प्राचीन समय से संत कबीर, नानक, राजाराम मोहनराय, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, ज्योतिबा फूले एवं बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर, ई.बी. रामा स्वामी पेरियार, केरल में नारायण स्वामी गुरू, उत्तर प्रदेश में अच्युतानन्द, पंजाब में मंगराम इत्यादि ने हर स्तर पर सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शोषण व्यवस्था पर प्रहार किया। दलितों और जाति विरोधी आन्दोलनों के लिए स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान नयी दुविधाएं और संभावनाएं जुड़ गयी। वर्तमान में आर्थिक कूटनीति के लिए नया रास्ता बनाने की आवश्यकता है। दलित आन्दोलनों को विशेष रूप से जाति आन्दोलनों को सामान्यतः मूल्य सम्बन्धी अथवा परम्परागत व्यवस्था विरोधी आन्दोलनों के रूप में देखना चाहिए। परम्परागत वर्ण व्यवस्था की स्थापना, जाति व्यवस्था का उदय और परम्परागत रूढ़िवादी मान्यताओं की स्थापना, संतो, समाज सुधारकों के प्रयास, महात्मा गांधी एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर का योगदान एवं उनकी प्रमुख समस्याओं के विशद वर्णन एवं विश्लेषण की आवश्यकता है।

कूटशब्द : दलित, स्वर्ण, पवित्रता/अपवित्रता, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन, संवैधानिक प्रावधान।

प्रस्तावना
भारतीय समाज में गैर–बराबरी के प्रतिमानों को देखें तो जहाँ कुछ लोग समृद्ध हैं, भौतिक सुख सुविधाओं से सम्पन्न हैं तो वहीं अनेक लोग ऐसे भी हैं, जिनके पास आवश्यक संरचनात्मक आधारभूत सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। ये लोग अन्धविश्वासों, परम्पराओं और पौराणिक मान्यताओं के कारण शोषित, घृणित एवं वंचित जीवन व्यतीत करते हुए राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा से कटे हुए हैं। भारतीय समाज में कमजोर वर्ग, दलित और अल्पसंख्यक की अवधारणा बहुत अस्पष्ट है। समाज का यह वर्ग विभिन्न प्रकार की संरचनात्मक सुविधाओं से वंचित है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा हैं, साथ ही जाति, लिंग एवं धर्म के भेदभाव के कारण शोषित हो रहा है। शताब्दियों से इस देश की समाज व्यवस्था, समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को शूद्र श्रेणी में रखती रही है। शूद्रों में एक वर्ग समूह को अछूत घोषित कर दिया गया, जिसकी छाया में भी अस्वच्छ हो जाने की आशंका से ग्रस्त होकर अपने आपको सवर्ण मानने वाले लोग कतराने लगे। पिछले कुछ वर्षो से इस वर्ग के लोगों ने अपने लिए अछूत. अस्पृश्य, हरिजन आदि शब्दों का त्याग करके अपने आपको दलित कहलाना पसन्द किया है।
दलित वर्ग एवं समाज की अवधारणा को लेकर प्रारम्भ से ही बौद्धिक एवं अकादमिक जगत में अन्तर्विरोध रहा है। दलित को समाजशास्त्री एक सामाजिक श्रेणी मानते है। जबकि नृतत्वशास्त्री सामाजिक–सांस्कृतिक श्रेणी मानते है। आज बहुसंख्यक दलित आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का हिस्सा है। पूर्व में ये 'डिप्राइव्ड' (वंचित) अछूत और हरिजन के नाम से जाने जाते थे लेकिन भिन्न–भिन्न कारणों से स्वीकृति नहीं बनी। वंचित श्रेणी के बहुत व्यापक हो जाने का भय था तो अछूत में सीमित हो जाने का डर था। 'हरिजन' शब्द से इस श्रेणी से सम्बद्ध लोगों की वैयक्तिक गरिमा को बनाने का प्रयास था इसलिए दलित शब्द ज्यादा प्रचलन में रहा। यद्यपि संविधान में दलित शब्द कहीं भी प्रयुक्त नहीं किया गया है। समाज के निचले हिस्से पर रहने वाली जातियों को कुछ तय मापदण्डों पर पहचान करके उन्हें सूचीबद्ध किया गया था। तत्पश्चात सामाजिक उत्थान के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों के लिए 'अनुसूचित जाति' पद प्रयुक्त किया गया है। जबकि सामाजिक परिवर्तन के लिए चले आन्दोलनों में ऐसे समुदायों के लिए दलित शब्द प्रयुक्त करते रहे हैं।
शाब्दिक अर्थों में 'दलित' वह है जो सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः उपेक्षित हैं, जो वर्ण तथा जाति व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे नीचे है, जो शोषित है, पीड़ित है, जिसकी कोई पहचान नहीं बन पाई है

जिसके अस्तित्व को भी स्वर्ण वर्ग ने नकारा है, जिसकी अस्मिता को सतत् रौंदा जाता रहा है। सामाजिक तथा आर्थिक वंचना जिसका प्रमुख लक्षण है।

'दलित' कोई नया शब्द नहीं है, 1930 से हिन्दी और मराठी में इसका निरन्तर प्रयोग रहा है। ब्रिटिश काल में पीड़ित वर्ग जिन्हें आज अनुसूचित जाति भी कहा जाता है, दलित शब्द के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते थे। सन् 1930 में दलित वर्गों की ओर से पूना में एक समाचार पत्र प्रकाशित होता था जिसका नाम दलित बन्धु' था यहीं से यह शब्द लोकप्रिय हुआ। महाराष्ट्र में निम्न जातियों की श्रेणी में महारों की परिस्थिति सबसे दयनीय थी। वे समस्त सार्वजनिक सुविधाओं से वंचित थे। दूसरे, उन्हें किसी भी प्रकार के सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे यह वर्ग, वस्तुतः सामाजिक दासता का प्रतीक था।

दलित शब्द क्षेत्रीय भाषा का शब्द है (वेबस्टर, 1999)। ज्योतिबा फूले ने सर्वप्रथम दलित शब्द का प्रयोग किया। लेखिका गैल आम्बेट ने अपनी पुस्तक "दलित विजन" में दलित परिपेक्ष्यों के बारे में बताया है। ये परिपेक्ष्य लोकप्रिय तथा विद्धत भाव दोनों के ही हैं। ज्योतिबा फूले, ताराबाई, डा. भीमराव अम्बेडकर सभी इस परिपेक्ष्य में आते है। गैव आम्बेट ने विस्तार से उन ऐतिहासिक कारकों की विवेचना भी की है जिससे दलित वर्ग उत्पन्न हुआ। बहुत सारी टीकाए ऐसी भी हुई हैं जो दलित तथा उसमें जुड़े आन्दोलनों को स्वाभीमान का प्रतीक मानते हैं।

'दलित' शब्द से अर्थ है जिसका दमन हुआ है, जिसे दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि (वाल्मिकी, 1997) है। इसी प्रकार से दलित समाज की अवधारणा पर विचार करते हुए लिखते हैं कि ''भारतीय समाज व्यवस्था (हिन्दू) में सबसे निचले स्तर पर समझी जाने वाली जातियां दलित समाज है।" दलित विचारक शरण कुमार लिम्बाले का मानना है कि 'दलित' शब्द की व्याख्या में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से काम नहीं चलेगा, उसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों का भी समावेश होगा। लिम्बाले ने लिखा है कि गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर श्रमिक, काश्तकारी जनता और यायावर जातियाँ 'दलित' शब्द से व्याख्यायित होती है।'' वर्तमान समय में 'दलित' शब्द के प्रयोग से वास्तविकता में किस समूह को सम्बोधित किया जा रहा है, पता नहीं चलता है (विवेक कुमार 2002)। 'दलित' का शाब्दिक अर्थ गरीब एवं शोषित है। 'दलित' शब्द की परिभाषा में समाज के अनुसूचित जातृि जनजाति, मजदूर, भूमिहीन एवं गरीब किसान, आर्थिक व धार्मिक रूप से पीड़ित एवं शोषित सदस्यों को शामिल किया गया है। यह निर्विवाद है कि संविधान में जिन्हें अनुसूचित जाति कहा गया है वह तो अब दलित के रूप में पहचान बना ही चुके हैं।

हिन्दू समाज में जाति एवं वर्ण व्यवस्था

दलित वर्ग का संबंध हिन्दू जाति व्यवस्था से है अतः इस व्यवस्था के कुछ पक्षों को समझना आवश्यक है। 'दलित' हिन्दू समाज के पदानुक्रम में निचले स्तर पर मानी जाने वाली कुछ जातियों का समूह है। दलित जातियों का हिन्दू वर्ण व्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दू वर्ण व्यवस्था के उदय तथा शूद्रों की उत्पत्ति के लिए कई पौराणिक कथाएँ एवं मिथकीय व्याख्याएँ उपलब्ध हैं। एक पौराणिक मान्यता में गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए चारों वर्णों की उत्पत्ति को कर्म से जोड़कर बताया है। श्रीकृष्ण ने कहा है कि हे अर्जुन 'मैने ब्राह्मण (मुख) क्षत्रिय (भुजा) वैश्य (उदर) शूद्र (पैर) से उत्पन्न किये हैं।'' आदिकाल में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत जो किसी भी प्रकार से चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण में नहीं आते थे उन्हें पाँचवें और अन्तिम वर्ण 'अन्त्यज' कहा जाता था क्योंकि ये समाज के निम्न स्तर के व्यवसाय करते थे। इसलिए इनका स्पर्श करना पाप माना जाता था। इन पर समाज ने सबसे अधिक प्रतिबन्ध लगा दिए थे। इनकी स्थिति सभी प्रकार से दयनीय थी इसलिए ऐसी जातियों को दलित जाति से सम्बोधित किया जाता था। सरकारी रिकार्डों में इन्हें इसी नाम से सम्बोधित किया जाता था। इनको प्रथम चार वर्णों से अलग और अपवित्र माना जाता था। धर्मशास्त्र काल में चौथे वर्ण – शूद्र को भी इनके साथ जोड़ दिया गया। जब जाति की सदस्यता जन्म के द्वारा निश्चित होने लगी तब वर्ण संकर भी इसमें सम्मिलित किए जाने लगे। दूसरी और ऐसे दर्जनों लेखक हैं जो अछूतों को अनार्य, दस्यु. द्रविड, शक या हूणों से जोड़ते हैं, और आर्यों के प्रतिद्वन्दी बताते हैं। इस प्रक्रिया में एक मान्यता यह उभर रही है कि आर्यों के आक्रमण के बाद जो दास बना लिए गए. वे शूद्र है और जो जंगलों में भाग गए वे आदिवासी हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'शूद्रों की खोज' में यह स्पष्ट किया है कि शूद्र अनार्य नहीं है, प्राचीनकाल में कई तेजस्वी और बलशाली राजा शूद्र थे।

भारतीय हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था एवं जाति मूलाधार रहे हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने समाज को चार वर्णों में बाट कर विषमतापूर्ण समाज का निर्माण किया है, जो कालांतर में अनेकानेक जातियों में बंट गया। इससे मानव–मानव के बीच भेदभाव उत्पन्न हो गया तथा निम्न समझे जाने वाले शूद्रों का जीवन कठिन हो गया है। इस विषमतापूर्ण जाति–व्यवस्था के बारे में बताते हुए डॉ. भीमराव अम्बेड़कर ने कहा है कि ''हिन्दुस्तान देश केवल विषमता का आश्रय स्थल है, हिन्दू समाज उसकी एक मीनार है और प्रत्येक जाति उसकी एक मंजिल है लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि इस मीनार में सीढ़ी नहीं लगी है। एक मंजिल में जो जन्मे उसी मंजिल में वह मरे, नीचे की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे कितना भी लायक क्यों न हो उसे ऊपर वाली मंजिल में प्रवेश नहीं और ऊपर की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे वह कितना ही अयोग्य क्यों न हो उसे भी नीचे की मंजिल में ढकेलने का साहस किसी में नहीं है।''

भारतीय दलित समाज में चेतना

'दलित चेतना' से अभिप्राय उस विचार से है जिसके द्वारा अस्पृश्यता, अत्याचार एवं शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो तथा मानव–मानव के बीच भेदभाव ऊंच नीच की दीवार को हटा कर पीड़ित मानवता के स्वाभिमान को जगाया जाए। सभी रूढ़ियों ब्रह्माचारों, भाग्यवाद, अंधविश्वास आदि से मुक्ति के लिए संघर्ष, दलित चेतना के प्रमुख आयाम हैं, जिससे सदियो से अन्याय और अत्याचार से पीड़ित मानवता को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ा जा सके। भारतीय समाज में सदियों से शोषण की परम्परा के विरूद्ध प्रतिरोध का स्वर मुखरित हुआ है जिसे समय–समय पर धर्म व समाज सुधारकों ने गति दी है। डॉ भीमराव अम्बेडकर मार्क्सवादी विचारधारा के बहुत समीप थे। वर्ग संघर्ष का प्रतिरूप उनके मन मस्तिष्क में था (गैल आम्बेट, 1996)। दलित चेतना का संदर्भ वर्ग चेतना के साथ जोड़ा जा सकता है।

दलितों को सामाजिक पहचान दिलाने या उन्हे मानवीय धरातल पर स्थापित करने की चेतना सम्बन्धी कोई कार्य अंग्रेजों ने नहीं किया। ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजों ने शूद्र तथा अस्पृश्य वर्ण के स्तर की जातियों को हिन्दू जाति व्यवस्था से अलग करके इसाई धर्म में परिवर्तित करने के कई प्रयास किये। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार की राजनीतिक चाल को समझ कर इसके विरोध में आमरण अनशन किया तथा ब्रिटिश सरकार को ऐसा करने से रोका। महात्मा गांधी अस्पृश्य जाति को हिन्दू समाज में विभिन्न निर्योग्यताओं से मुक्त करवाने तथा अन्य जातियों की तरह समान विशेषाधिकार दिलवाने के लिए अनेक प्रयास किये जिसमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य इन्हे भगवान का जन या हरि का जन अर्थात 'हरिजन' नाम देना था। तब से आज तक इनका नाम 'हरिजन' चल रहा है।

भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान महात्मा गांधी, डॉ भीमराव अम्बेडकर ने अछूतों के उद्धार का बीड़ा उठाया तथा हिन्दू समाज के एकीकरण में जी जान से जुट गये। महात्मा गांधी ने स्वयं अछूत बस्तियों में रहकर अछूतों हेतु कई गतिविधियां आरम्भ कीं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अछूतों को अपने अधिकारों के प्रति लड़ाई लड़ने हेतु ''बहिष्कृत हितकारिणी सभा'' का गठन किया जिसका उद्देश्य अछूतों में जागृति लाना था। अम्बेड़कर ने दलित वर्गों की पुलिस तथा भारतीय सेना में भर्ती के लिए संघर्ष किया। दलित जातियों के लिए एक अलग निर्वाचक मण्डल बनाने तथा संघीय व प्रान्तीय विद्यार्थियों में दलित प्रतिनिधियों को अलग से चुनकर भेजे जाने के लिए संघर्ष किया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का एक ही नारा था कि ''शिक्षित बनो, संगठित रहो तथा आन्दोलन करो। डॉ. भीमराव अम्बेडकर दलितों के शोषण एवं अन्याय को समाप्त करने के लिए हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था एवं जाति प्रथा का उन्मूलन आवश्यक मानते थे क्योंकि अछूत प्रथा की जड़ जाति प्रथा में ही थी एक तरफ देश जहां अंग्रेजों की गुलामी एवं दासता के विरूद्ध संघर्ष कर रहा था वहीं डॉ. भीमराव अम्बेडकर हिन्दू समाज द्वारा दलितों पर थोपी गई सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक र्निंयोग्यताओं एवं शोषण के खिलाफ संघर्ष किया। वे दलितों को भी हिन्दुओं के समान ही समाज में एक सम्मानजनक स्थान दिलाना चाहते थे। जहाँ महात्मा गांधी की विचारधारा ने दलितों की ओर देखने की नई दृष्टि सवर्णों को दी, वहीं अम्बेडकरवाद ने दलितों के स्वाभिमान से उठ खड़े होने की शक्ति दी है।

भारतीय दलित समाज की प्रमुख समस्याएं

यदि हम दलित जातियों का इतिहास देखें तो यह स्पष्ट हो जाता हैं कि इनकी प्रमुखः समस्याएं विविध प्रकार के शोषण, प्रतिबन्ध एवं निर्योग्यताएँ आदि से जुड़ी हुई है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था ने दलित समाज पर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक निर्योग्यताएं लागू की तथा उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया जबकि समाज के द्विज वर्णों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। यदि हम दलितों की धार्मिक समस्याओं को ले तो ये लोग मन्दिरों, देवालयों में प्रवेश नहीं कर सकते थे, प्रार्थना अर्चना करना तो दूर, ये लोग भजन आदि तक को सुन नहीं सकते थे। धर्म ग्रन्थ पढ़ना तथा सुनना, यज्ञोपवीत धारण करना निषिद्ध था। दलित लोग जन्म, विवाह एवं मृत्यु सम्बन्धी संस्कार ब्राह्मण पुरोहित के द्वारा सम्पन्न करवाने में असमर्थ था। इनकी बस्तियां ग्राम एवं नगर के बाहर स्थित थीं। इन लोगों को स्वच्छ तथा साफ–सुथरे स्थलों पर अपनी झोपड़िया बनाकर रहने का अधिकार नहीं था।

दलित जातियों के लोग सार्वजनिक स्थानों तथा सुविधाओं का उपयोग नहीं कर सकते थे। ये लोग स्वर्ण जातियों के कुओं से पानी नहीं भर सकते थे, पक्के मकान नहीं बनवा सकते थे. इनको शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। मनोरंजन के लिए सार्वजनिक मेलों, चौपालों, रामलीला, खेलकूद प्रतियोगिता, मल्ल युद्ध, हाट बाजारों, कठपुतली का तमाशा इत्यादि को देखना, उनमें शामिल होना, भाग लेना आदि का अधिकार नहीं था। इन लोगों को झगड़े, चोरी, बेईमानी, दंगे फसाद में गवाही देने का अधिकार नहीं था। ये लोग पंच और सरपंच नहीं बन सकते थे। इनको मतदान करने का अधिकार स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व किसी भी काल में नहीं था। सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में इनको किसी भी सार्वजनिक या प्रशासनिक पद पर नियुक्त नहीं किया जाता था। इन्हें किसी भी राजनीतिक क्रियाकलाप तथा कार्यों में भाग लेना निषिद्ध था। साफ–सफाई करने. मलमूत्र उठाने, मरे हुए पशुओं को ढोने, चमड़े का उत्पाद बनाने से जो पारिश्रमिक मिल जाता था उसी से जीवन व्यतीत करना होता था।

दलित समाज की समस्याओं के सुधार हेतु संत कबीर, रामानुजाचार्य, जगदगुरू शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, नानक, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, केशवचन्द्र सेन, राजा राममोहनराय, ज्योतिबा फूले ने अपने अपने समय में प्रयास किये। आर्य समाज सत्यशोधक समाज, अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ, अखिल भारतीय दलित वर्ग फैडरेशन, हरिजन सेवक संघ, सर्वेण्ट्म आफ इण्डियन सोसायटी, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने दलित जातियों के सामाजिक कल्याण तथा विकास के लिए समय–समय पर अनेक कार्य किये गये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के संविधान द्वारा इन दलित जातियों, पिछड़े वर्गो, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों को अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक अधिकार प्रदान किये गये। सैद्धान्तिक रूप से कानून के रूप में अनेक सुविधाएं तथा अधिकार प्राप्त हो गये लेकिन व्यवहार में अभी तक कितना मिल पाया है और कितना मिलना शेष है, इस पर विवाद एवं एकमतता का अभाव है। फिर भी अनेक क्षेत्रों में अभी भी दलित जातियां सवर्णों के डर के कारण अपनी पूर्व स्थिति में ही जीवन व्यतीत कर रही है। सवर्ण और अवर्ण के झगड़े, मारपीट, आगजनी, हत्याएं, लूटपाट आदि होती रहती है। अखबारों एवं पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से आये दिन ऐसी घटनाएं सामने आती हैं, जैसे–दलित दूल्हे को घोड़ी से उतारना, दलितों की निर्मम हत्या जैसी घटनाएं सच की तस्वीर दिखाती है। सरकार द्वारा दी गई आर्थिक सुविधाएं इन तक पूरी नहीं पहुंच पाती हैं।

निसन्देह, दलित जीवन एक राष्ट्रीय प्रश्न है। इसे मानवीय मूल्यों की दृष्टि से देखना चाहिए। समानता एवं बराबरी पर आधारित सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था के बिना देश समृद्ध और सम्पन्न नहीं हो सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम पारम्परिक रूढ़ियों, मान्यताओं का त्याग कर समानता, स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करें। मानव जीवन का उद्देश्य केवल धन बटोरना ही नहीं है। वरन् यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में पर्याप्त मान–सम्मान के साथ जीवन व्यतीत करने का समान अवसर मिले। दलित लोग जो ऐतिहासिक विकृतियों के कारण समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं बना सके हैं, उन्हें यह स्थान दिलाने तथा उन्हें अपने अधिकार दिलाना हम सभी का नैतिक दायित्व है। दलित समाज के उत्थान में लगी सरकारी एवं स्वयंसेवी संस्थाएं पूर्ण निष्ठा, लगन एवं ईमानदारी के साथ कार्य करें तभी समतामूलक समाज का सपना पूर्ण हो सकता है। समाज में सभी प्रयासों से सकारात्मक परिणाम सामने आने लगें है।

सन्दर्भ

1. आम्बेट, गेल : दलित विजन, हैदराबाद (1996) मैकमिलन।
2. भारती, कवल : दलित विमर्श की भूमिका एवं इतिहास, इलाहाबाद (1998) बुद्ध प्रकाशन।
3. देसाई ए. आर. : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि. नई दिल्ली (1981) द मेकमिलन प्रकाशन।
4. कुमार, विवेक : दलित साहित्य का समाजशास्त्र, उत्तरप्रदेश (2002) सितम्बर–अक्टूबर, नई दिल्ली, विकास प्रकाशन।
5. रणसुभे, सूर्यनारायण : दलित साहित्य स्वरूप और संवेदना, नई दिल्ली (1996) अनमोल प्रकाशन।
6. रत्तु, कृष्ण कुमार : भारतीय दलित और मानवाधिकार, जयपुर (2002) बुक एनक्लेव।
7. सहारे, एम. एल. : डा. भीमराव अम्बेडकर जीवन और कार्य, नई दिल्ली (1993) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
8. वाल्मीकि, ओम प्रकाश : दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, नई दिल्ली (1997) आशीष प्रकाशन।
9. वेबस्टर, जॉन, सी बी : हू इज दलित? दलित्स इन मॉडर्न इण्डिया, न्यु देहली (1999) विस्तान।

10. गेल ओमवेट : दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति अनुवादक नरेश भार्गव, नई दिल्ली (2009) रावत पब्लिकेशन।
11. कोठारी रजनी : पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली (1970) आरियंट लांगमैन।